नहीं; **हि**=निःसन्देह; **उपपद्यते**=मिलना सम्भव है।

अनुवाद

हे कृष्ण! मेरे इस संशय का पूर्णरूप से निवारण करने में एकमात्र आप ही समर्थ हैं। आपके अतिरिक्त इस संशय को दूर करने वाला मिलना सम्भव नहीं है।।३९।।

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण त्रिकालज्ञ हैं, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। भगवद्गीता के उपोद्घात में उन्होंने कहा है कि सम्पूर्ण जीव पहले भी अपने-अपने निज स्वरूप में विद्यमान थे, वर्तमान में भी हैं और भविष्य में मायाबन्धन से मुक्ति के बाद भी उनका जीवस्वरूप बना रहेगा। अतः जीवात्मा के भविष्य विषयक प्रश्न का उत्तर वे पूर्व में दे चुके हैं। यहाँ अर्जुन जानना चाहता है कि असफल योगी की क्या गति होती है। श्रीकृष्ण असमोर्ध्व हैं, उसके समान अथवा उससे अधिक कोई नहीं है। अतः माया में बँधे हुए महर्षि और दार्शनिक निःसन्देह उनके बराबर नहीं हो सकते। भगवान् श्रीकृष्ण का निर्णय सम्पूर्ण संशयों का अन्तिम एवं पूर्ण समाधान है; कारण, श्रीकृष्ण त्रिकालज्ञ हैं, जबकि उन्हें कोई भी नहीं जानता। एकमात्र श्रीकृष्ण और कृष्णभावनाभावित भक्त ही वास्तव में तत्त्वज्ञ हैं।

श्रीभगवानुवाच।
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।४०।।

श्रीभगवान् उवाच=श्रीभगवान् ने कहा; **पार्थ**=हे पृथापुत्र (अर्जुन); **न एव**=कभी नहीं; **इह**=इस संसार में; **न**=नहीं; **अमुत्र**=अगले जन्म में; **विनाशः**=नाश; **तस्य**=उसका; **विद्यते**=होता; **न**=नहीं; **हि**=निःसन्देह; **कल्याणकृत्**=कल्याणकारी कर्म करने वाला; **कश्चित्**=कोई भी; **दुर्गतिम्**=पतन को; **तात**=हे सखे; **गच्छति**=प्राप्त होता।

अनुवाद

श्रीभगवान् ने कहा, हे पार्थ! कल्याणकारी कर्म करने वाले योगी का इस लोक में अथवा परलोक में भी विनाश नहीं होता। हे सखे! सदाचारी का कभी अमंगल नहीं हुआ करता।।४०।।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१.५.१७) में श्रीनारद मुनि ने व्यासदेव को यह उपदेश दिया है:

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः।।

"सम्पूर्ण सांसारिक आशाओं को त्यागकर जो पूर्णरूप से हरिचरणाश्रित हो गया है, उस भक्त के लिए हानि अथवा पतनरूपी अमंगल की आशंका नहीं रहती।